समय रहते

धर्मेन्द्र पारे

धर्मेन्द्र पारे की पक्षधरता स्पष्ट है लेकिन उसमें वैचारिकता के प्रति कठमुल्लापन का आग्रह कहीं नहीं है। जिस कवि में मनुष्यता के प्रति खुली और व्यापक समझ होती है, उसकी पक्षधरता को सिर्फ एक ही वाद में देखना चाहिए, जिसे मानवतावाद कहते हैं।

धर्मेन्द्र की कविताएँ हिन्दी के उन पाठकों द्वारा अवश्य ही समादृत होंगी, जो सृजन की सहजता पर यकीन करते हैं। ये कविताएँ जो कहती हैं, उसे आत्मसात करने के लिए पाठकों को इनके हमवतन होना पड़ेगा, जहाँ उसका कवि हिन्दी भाषा के मानक रूपों के साथ अपने अंचल की मिठासभरी 'भुआणी' बोली के मुहावरों का काव्यात्मक लहजों में समाहार करता है। हिन्दी के साथ भुआणी के सानुपातिक शब्द प्रयोगों से धर्मेन्द्र की कविता में कई जगह अभिव्यंजना की बेहतरीन खूबियाँ देखने योग्य होती हैं। यह उसके काव्य-व्यक्तित्व का निजत्व है।

(अगले फ्लैप पर जारी)

समय रहते

(धर्मेन्द्र पारे का दूसरा कविता-संग्रह)

समय रहते

धर्मेन्द्र पारे



मेधा बुक्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032



प्रकाशक
मेधा बुक्स
एक्स-11, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110 032
✆ 22 32 36 72
medhabooks@rediffmail.com

मूल्य
125.00

प्रथम संस्करण
सन् 2006

आवरण
कुबेर दत्त

मुद्रक
अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

SAMAY RAHTE
by
Dharmendra Pare

ISBN 81-8166-131-1

अजय जैन

राजेश विश्नोई

कार्तिक शर्मा

और

राजेंद्र बंधु

के लिए

अनुक्रम

समय रहते

स्कूल बंद होने पर
बहुत खुश होते हैं बच्चे

इतवार खुशी का दिन
होता है उनका

कैरियाँ पक जाने पर
शिक्षकों के नाम ले-लेकर
पत्थर फेंकते हैं वे
और बहुत आह्लादित होते हैं
बच्चे

बच्चों की दुनिया में
कई-कई बुरे नाम होते हैं
शिक्षकों और पाठों के।

दो महीने की छुट्टियों में
अखिल ब्रह्मांड के
शहंशाह होते हैं वे

बंद स्कूल देख-देख
बहुत नाचते हैं बच्चे

ऐसा क्या है स्कूल और शिक्षकों
और पाठों में
जो बच्चों को उदास दुखी
और खिझरा बनाती है।

समय रहते हमें
इन्हें बदल देना चाहिए।

विराट आँखों से देख रहा हूँ
मैं सभ्यता का सबसे बूढ़ा द्वारपाल
सबसे थका चौकीदार हूँ
मुझे भी बर्ख़ास्त कर दिया है
यह ख़ास ख़बर है
युद्धों हत्याओं से नहीं घबराया हूँ मैं
बलात्कारों से भी नहीं।
पाएँ के नीचे मेरे ही सामने तो
दबाकर मारा था कितनों को
साक्षी हूँ मैं सारे पापों का
पर अब कोई साक्ष्य
साक्ष्य भी नहीं रहा
दुःख भी दुःख नहीं रहा
जैसे कुछ नहीं रहा
किसी दैत्य ने नहीं दबाया दाढ़ में इसको
इसको नहीं लूटा धर्मांध लुटेरों ने
किसी युद्ध में नहीं मिटाया इसको

बस एक नशा बहुत धीमे-धीमे
लगातर द्रुततर होता गया
और पता ही न चला
जिन्हें पता चला वे भी इस
नशे में लापता हो गए

यह कविता
इसी समय के बारे में है
यह समय
इस कविता से भी पार जाएगा
यह कविता
इस इतिहास के आख़िरी द्वार पर
टँगी होगी।

यह समय है सतत.....आमेना!

यह तुम हो
बैठी हुई कुर्सी पर
यह समय है सतत....

यह तुम बोल रही हो
आख़िरी शब्द
इस समय के आख़िरी क्षण हैं ये

आख़िरी क्षण के भी आख़िरी क्षण
हैं ये
इन क्षणों में भी मैं कहना
चाहता हूँ तुम्हें....कि
मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ
आमेना!

यह कुर्सी कल
समा जायेगी परसों में
परसों समा जायेगा तरसों में
तरसों वर्षों में
वर्षों समायेंगे इतिहास में
इतिहास समा जायेगा यादों में

यादें समा जायेंगी मुझमें
मैं समा जाऊँगा इतिहास में
इतिहास समय में
यह समय ऐसे ही बनता है
आमना उर्फ़ आमेना!

किसी भी समय में ऐसे ही
समाता है इतिहास
इतिहासों में ऐसे ही दफ़्न
होती हैं हज़ारों यादें
यादों में ऐसे ही दफ़्न होते हैं
हम तुम
ऐसे ही समय बनता है
समय!

इस समय तुम जा रही हो
हमेशा के लिए
आमेना!!
यह तुम हो
बैठी हुई कुर्सी पर
यह समय है सतत....
आमेना!

गाय

यह गाय सिर्फ़
दूध नहीं थी हमारे लिए
उपला कंडा भी नहीं थी
धर्म पूजा भर नहीं थी
यह गाय।
चमड़ा तो कभी नहीं थी
मेरा बचपन बीता था उस
गा-गा, लो-लो के साथ

जब जंगल जाती थी यह
इसकी बछिया के साथ मैं भी रंभाता था
उसकी आँखों का भय और उदासी
मेरी आँखों में उतर आता था
इसका बच्चा मरा था जब
तीन दिनों तक कुछ नहीं खाया था इसने
और माँ ने मुझे बताया था
गाय को नदी के पानी में अपने मृत

बच्चे की परछाईं दिखती है
उन तीन दिनों में मैं भी
टुकुर-टुकुर कई बार
जाकर इसकी आँखें देखता
रहा था

कभी नदी पर जाकर परछाईं खोजता था
और सचमुच गाय की आँखों में
मुझे बच्चा दीखता था
और मैं सहम जाता था

इस गाय से मेरा रिश्ता
किसी आंदोलन के तहत नहीं था
पर माफ़ कीजिए
जैसे अपनों से करता है कोई प्रेम
वैसा प्रेम मेरा था
यह क्या छुपाने की बात है ?

पहचान

चावल की इल्लियाँ
ठीक चावल की तरह हो जाती हैं
गोभी के रंग में छुप
जाते हैं कीड़े

वैसा ही रूप अख़्तियार कर
लेते हैं वे
आम के भीतर

कोशिकाओं में
वायरस
और ख़ून में
पानी के कारक
बन बैठ जाते हैं

हर स्वस्थ और सुखी
चीज़ में
बड़ी सफ़ाई से घुस जाते हैं

यहाँ तक कि
विचारों में भी
ठीक विचारों की तरह
लगते हैं वे

व्यवस्था में
व्यवस्था की तरह
होने की कोशिश करते हैं
अर्थव्यवस्था में
अर्थव्यवस्था की तरह

उन्हें पहचानना
और चुनना
कितना जरूरी है
हर मूर्त और अमूर्त स्थिति से
बाहर निकाला जाना चाहिए उन्हें !

यहाँ तक कि
विचारों में भी
ठीक विचारों की तरह
लगते हैं वे

व्यवस्था में
व्यवस्था की तरह
होने की कोशिश करते हैं
अर्थव्यवस्था में
अर्थव्यवस्था की तरह

उन्हें पहचानना
और चुनना
कितना जरूरी है
हर मूर्त और अमूर्त स्थिति से
बाहर निकाला जाना चाहिए उन्हें !

उत्तर मनुष्य

आगामी समय में
कोई नहीं जाएगा

लड़कियाँ
लड़की नहीं होंगी

और

पुरुष
पुरुष रूप में नहीं

सब बहुत तेज़ी से
बदल रहे हैं

इतना ज्यादा कि
पहचानना भी
उन्हें
आसान नहीं रहा।

आगामी समय में
कोई नहीं जायेगा
आगामी समय में
समय नहीं जायेगा
जो जायेगा
वह
असमय जायेगा
उत्तर मनुष्य
होगा वह।

समय

नदी मरेगी
तो
याद करेगी मछली।

मरेगा आसमान
तो ढूँढेगा
पंछी और तारे।

दुनिया मरते-मरते
खोजेगी
आदमी।

सब चीजें बदल
रही हैं
समय बदल रहा है

अब सब कुछ
पहले जैसा
तय नहीं है।

बीज की तरह समय

यह निविड़ रात्रि है
धवल धवल विराट शून्य
सो रहा है पूरा गाँव
पूरी वनस्पति पूरी जगती
जाग उठा है शिशु एक
खेल रहा है वह चाँद से
अपनी खाट पर बैठकर
कवि इस समय को चुन रहा है
बीज की तरह ताकि बो सके सारी धरा पर
इस समय को खिलाने के लिए।

सच सच बतलाना आमेना

आमेना जब तुम
हो जाओगी पिचहत्तर साल की
क्या स्वीकार कर पाओगी
अपनी पोती के सामने
कि धरती से लिपट कर रोई थी तुम
कभी जार-जार
कि कई-कई दिनों तक रही थी तुम
बहुत-बहुत उदास?
कि तुम्हारी किताबों में रखे रहे थे कई बरस तक फूल

कि देव प्रतिमाओं को कर दिया था तुमने खंडित

कि तुमने टाइटेनिक फिल्म की रोज
के साथ सिसकी भरी थी हजार बार
और हजार बार तुमने अपने दूधिया हाथ
को छूकर देखा था
जिन पर अंकित थे मेरे हजार चुम्बन
और गर्म आँसुओं की बूँदों से और भी नर्म हो गई थीं
अँगुलियाँ तुम्हारी?
आमेना उर्फ आमना
सोचता हूँ पिचहत्तर साल की उमर में
तुम्हें रहेगा क्या-क्या याद?
कितना हिस्सा निरस्त कर दोगी
अपने सबसे सुर्ख जीवन का?
सच-सच बतलाना आमेना
क्या तब भी तुम टाइटेनिक के टुकड़ों पर बैठी
अपनी पोती को अकेले ही बचाने की कामना करोगी?

आमेना ! आमेना

मिथक कहेगा कोई
कोई कहेगा श्रुति की तरह।
कर देंगे किस्सागो इसको रससिक्त
साक्षी में एक तरफ हो जाएँगे कई-कई लोग।

सबसे प्रामाणिक होगा कथन उनका
जो जानते तक नहीं मुझे।
हजरत पैगम्बर मुहम्मद की माँ
पुराण है या इतिहास
प्रश्न करेंगे मीमांसक।
कोई अंधा तो उठा लेगा लाठी।

सब तलाशेंगे तुमको आमेना
कोई तलाशेगा गली मोहल्ले
अड़ोस-पड़ोस में
कोई तलाशेगा काबा दजला फरात
ईरान और तूरान में

नहीं देखेगा कोई मेरा दिल
ईमान मेरा

पूछेंगे मुझसे भी पता
तुम्हारा।
समझेंगे नहीं वे कविता
कविता नहीं तलाशेंगे वे कभी।
कि भूल जाना आमेना
इनकी बातों को
कर देना मुआफ इनको
तुम भी कहना उनके लिए
हे ईश्वर इन्हें क्षमा कर देना
ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं ये?

आमेना तुम जिंदगी बन जाओ
और रहो जिंदगी में ही।
इस तरह के मजहब को बहुत देर है आने में।
यह जिंदगी का मजहब बन जाए या सच ये हो कि
मजहब की जिंदगी आमेना हो जाए।

फिर मिलेंगे। अपनी न सही किसी और की
जिंदगी में बनकर।
तब कोई यह कविता नहीं लिखेगा।
यह कविता अधूरी है
उस दिन पूरी हो जाएगी।
आमीन! आमेना आमीन!!

मेरे पास आमेना

हाँ, तुम नहीं थी मेरे पास आमेना
कि जा चुकी थी तुम
सात समुद्र आठ खंड और नौ द्वीपों के पार
कि मैं तुमसे कहना चाहता था
कि मैं तुमसे बेइन्तहा प्यार करता हूँ
पर लफ्ज मेरे घुल जाते थे हवाओं में
मैंने कई बार लफ्जों को कहा कि
तुम इन हरे सागौन के पत्तों पर ठहर जाओ
तुम सतपुड़ा घाटी के इन कोरकुओं में खो जाओ
या गुम हो जाओ जैसे कालीभीत पहाड़ों से खो गए हैं
नाहर, मावला, जरक और हिरण
पर आमेना तुम मेरी स्मृति में किसी फासिल्स की तरह
जमती गई हो
रह गई हो इतिहास की किसी बर्बर कार्यवाही के
निशानों की तरह जो धर्म और ईश्वर के नाम पर की गई थी।
मैं तुम्हें भूलना चाहता था
जैसे नदी के हृदय से गुजरी कोई पूर हो
जैसे पेड़ों पर से निकला हो कोई पतझर
सचमुच मैं कलकल बहना चाहता हूँ दुबारा
सचमुच मैं बार-बार हरियाना चाहता हूँ।
आमेना क्या तुम आबे जमजम और
हरियाली का नूर लेकर आ रही हो?

पशुओं के नाम

ख़त्म हो रहा है बीसवीं सदी का
काला सूरज
इक्कीसवीं सदी की चाँदी-सी चमकती सड़कों पर
सोने का सूरज उदित हो रहा है
नैना साहनी अपने तंदूर सहित भुला दी गई
जेसिका लाल को कितने लोग जानते हैं ?
जिसे
बैल की तरह जोत दिया गया
धुर निमाड़ के गाँव में
उसका तो कोई नाम भी नहीं
जैसे नहीं होते नाम पशुओं के।

मोरिया खेरिया कड़ौला वाला

मोरिया खेरिया कड़ौला से आने वाले
दूधिये रामलाल खुशालजी को
पिछले कई दिनों से बड़े गौर से
देखता है अपना कवि।

आख़िर सकुचाते झिझकते एक दिन
पूछ ही बैठा मोरिया खेरिया कड़ौला वाला
रामलाल खुशालजी
क्या कुछ गलती हो गई भैया?
दूध तो रोज की ही तरह है।

कवि बोला नहीं कुछ
रहा चुपचाप
लिखी डायरी में कुछ पंक्तियाँ—

पिछला दूध वाला अचानक हो गया है
धन कुबेर
दूध में पानी मिलाकर या कृत्रिम दूध

बेचकर नहीं
माँओं के दूध से अजन्मे बच्चों को
करके मरहूम।
मुझे चिंता इस बात की है कि
मोरिया खेरिया कड़ौला वाला
रामलाल खुशालजी भी कहीं
ऐसा तो नहीं हो जाएगा?
क्योंकि उसके लक्षण भी मिलने लगे
हैं पिछले से।
एक कवि की आशंका को दर्ज
होना चाहिए
यह कानून से चूक जाए पर
कविता से नहीं
ताकि सनद रहे और वक़्त ज़रूरत
आए काम आज लिख दी
दिनांक 6 दिस० सन् 2004
दिन शनिवार समय रात्रि दो बजे।

रींज

रींज का पेड़ खड़ा था
रींज के पेड़ पर बैठा कौआ खुजला रहा था पांखें
कीच झटक रहे थे कुत्ते
खोह में सुरक्षित बैठा था कालिया
रींज का पेड़ खड़ा था ध्रुव सत्य।
बेहद खुरदुरी और कुरूप छाल लपेटे
आम्रकुंजों से दूर, दूर लता मंडपों से
हवनों में, यज्ञों में, नहीं दी किसी ने आहूति
रींज पत्रों की।
फोड़ों पर बाँट-बाँट लगाई खूब पत्तियाँ रींज की
पर रींज से नहीं गूँथे गए माथे
कानों में नहीं खोंसा किसी ने रींज फूल
रींज की बागुड़ अलंघ रही है सदियों से

चंदन चिताओं का विकल्प बन
रहा है रींज।

कभी-कभी

लील गई
मृत्यु
सबको।
उनको भी
अमर्त्य थे जो।

जो मारे नहीं
गए
जी भी न सके वे
कभी भी।

अश्वत्थामा थे वे

कभी-कभी
स्वीकारना मृत्यु को
बुरा नहीं होता।

अच्छाई

दूधफ़रोशों में सबसे अच्छी मानी जाती है
सबसे भीरू गाय
चक्करघन्नी अर्जीधारी आदमी बाबुओं को
सुहाता है
सबसे चुप्प बच्चा शिक्षकों में बढ़िया
बताया जाता है
हार्न की घुड़कियों पर दमाक देकर जो भागे
ड्राइवर सबसे अच्छा राहगीर मानते हैं उन
आदिवासियों को
कुछ तीखे सींगों से बचे रह गए थन
कुछ बुरे लोगों से चलते रहे आख़िर दफ़्तर
कुछ बच्चों ने पढ़ाया शिक्षकों को रात-रात भर
कुछ उठे हुए पत्थरों ने रखा ड्राइवरों को गुनिए में
कुछ बुरे लोगों ने बचा लिया संविधान
कुछ बुरे लोगों से कायम रहे नियम
कुछ बुरे लोगों के डर से जागते रहे द्वारपाल
कुछ बुरी चीज़ों ने जग को पूरा पोला
नहीं होने दिया
बुरे लोगों से बची रह गई अच्छाई
हमारे बीच.....।

माँ

यहाँ एक निराकार है सारा संसार
सारा संसार निःशब्द है यहाँ
सूर्य मृत, मृत वायु, गगन मृत, तत्व समस्त
जीवित मैं, केवल मैं
मैं तुम्हें पुकारता हूँ
केवल तुम्हें पुकारता हूँ माँ!

माँ मेरा साथ दो माँ
माँ इतना निःसंग इतना एकांत
नहीं माँ!
मुझे फिर अपनी कोख से
जन्म दो
मुझे फिर देखो अपनी आँखों
से माँ

माँ मैं तुम्हारी आँखों से देखूँगा
सारा संसार
सीखूँगा तुम्हारी जिह्वा से भाषा
देखूँगा सूरज उगता हुआ
वायु हुलसायेगी मुझे
गगन गाएगा मुझमें
पंच तत्व मुझमें दो माँ
साथ दो मेरा।

सुखी बेटे

दीवाली मनाकर लौट आया हूँ गाँव से
तीस सालों की तरह इस साल भी।
लौट रहे हैं मेरे बचपन के साथी
मेरे बचपन के बाद के तरुण
प्रांत के विविध शहरों की तरफ़
मिलों की तरफ़, फ़ैक्ट्रियों की तरफ़
गोदामों, ट्रांसपोर्टरों की तरफ़
हाथ ठेलों की तरफ़, रिक्शों की तरफ़
दिल्ली, मुंबई, चेन्नई की तरफ़
मंडीदीप, पीथमपुर, देवास की तरफ़

साल भर में पाई-पाई जोड़कर
उधार पाव सूद-ब्याज पर कर्ज़ लेकर
पटाखे, सस्ते कपड़े, सेकेंड हैंड सामानों को साथ लाकर,
गाँव, माँ बाप, किसानी मजूरी में छूट गए साथियों के पास ये
संदेश

देकर ख़ामोश लौट रहे हैं कि वे शहर में खुश हैं
माँएँ संतुष्ट हैं कि बेटे उनके पराये शहर में सुखी हैं
बस इतना भर है कि चेहरे पर पानी नहीं आता
पिता को यह खुशी है कि बेटा
पुरखों की दुःख भरी विरासत से बच गया।

शहरों की तरफ़ लौट रहे हैं
सैकड़ों सुखी बेटे
दूलिया, मगरधा, बालागाँव, जामन्या,
झाड़पा से, झिरी से, झल्लार से
शस्य श्यामला वसुंधरा से
अपनी-अपनी थैलियों में
गुड़ और सिके आटे का कसार लेकर।

पाठ्य पुस्तकें

सबसे ज़्यादा झूठी थीं
पाठ्य पुस्तकें। जैसे थे
रेडियो, दूरदर्शन, नेता और संसद।

पाठ्य पुस्तकों में
पत्र लेखन प्रकार में
नहीं सिखाया गया
प्रेम पत्र लिखना।

प्रेम का मतलब
वे या तो बलात्कार
समझते थे या फिर
जिस्म और आत्मा का
पाप।

विचारों की किताब में
झूठ को उजागर करने वाले
विचार दबा दिए गए।

पाठ्य पुस्तकों में
तय संसार
तय विचार
तय आँख दी गई
जो उनके लिए सुविधाजनक था

लेकिन सावधान!
ये पाठ्य पुस्तकें
आदमी की ज़िंदगी के
कोर्स में नहीं रहेंगी।

किताब

मेरी सबसे पसंदीदा कविता की किताब की तरह
होना था तुम्हें मेरे घर में
तुम्हारी पंक्ति पंक्ति
तुम्हारे शब्द शब्द
पारदर्शी कर देते मुझे
कर देते तार-तार
धधका देते मुक्त और विलुप्त कर देते
ठोस से भाप में बदल जाता मैं
यह ताक़त कविता में ही हो सकती है
कविता का रसायन ही यह सब करने में सक्षम है
और समतल और गहरा
और उर्वर हो सकता था मैं
अच्छी और श्रेष्ठ कविताएँ यही
करती हैं हमेशा यह साधारण-सी बात है।
मेरे सीने पर रखी नींद में भी
मुझ पर लेटी एक अनिवार्य किताब
जो कि मेरे पास नहीं हो
एक अच्छी किताब
कितने अर्थ कितनी दिशाएँ
और रास्ते देती है।
तुम किताब के पन्नों की तरह
फड़फड़ाती हो मेरी नींद में
हर बार चूक जाने वाली
आखरी बस की तरह।

आत्मा की गुल्लक

तुम तो मुझे भूल चुकी होगी
विस्मृति के बाज़ार में
मैं अब तक नहीं भूला हूँ तुम्हें
मेरे पास आख़िरी सिक्का है
याद का
जिसे हर दुर्दिन में संभाल कर
रखा है मैंने

हालाँकि सिवनी मालवा में मुझे
अब कोई याद नहीं करता
सचमुच ऐसा ही लगता है
जैसे शून्य हो ब्रह्मांड
ज़िंदगी में कभी ख़र्च का नहीं
सोचा इस सिक्के को
सुना है ऐसी मुद्राएँ
अब चलन से बाहर हो रही हैं

आमेना

आमेना उन्नीस साल की
हरी और नीली आँखों वाली
संसार की सबसे सुंदरतम स्त्रियों में थी
उसकी आँखें संसार की सबसे सुंदरतम आँखें थीं
जिन्हें मैंने कभी नहीं देखा था
सपनों में भी नहीं कल्पनाओं तक में भी नहीं
वह मेरे साथ नब्बे के दशक में
एम०ए० के किसी भी साल में पढ़ती थी
जिसे मैंने कभी भी प्यार नहीं किया था
मौलाना साहेब!
ख़ुदा की क़सम!!
उसका रंग ऐसा दूधिया रंग था
जैसा रंग कुदरत ने दूसरा
नहीं बनाया था
मौलाना साहेब कुदरत की इस ख़ासियत की तरफ़
कभी प्लेटो ने भी कहा था जिसका
अरस्तू ने और फिर कई फिलासफरों ने खंडन
मंडन किया था पर सच यह है

कि आमेना के इस रंग को कभी
एक बहुत मासूम बच्चे ने
सिर्फ़ इसलिए छूकर देखा था कि शायद
उसकी अँगुलियाँ भी ऐसी ही दूधिया हो जाएँ
तब आमेना बहुत शरमायी थी मौलाना साहब
ख़ुदा क़सम मैंने यह भी नहीं देखा था कभी
किसी का वास्ता ले लो जिबह करके देख लो
मेरा दिल
मैंने आमेना से कभी मोहब्बत नहीं की थी
आमेना ने मेरी ओर कभी
आँख उठाकर भी नहीं देखा था
आमेना किसी दूर घाटी में नवाब
या किसी अरब शेख़ के देश में है
या गुले बकावली की तरह है या है
शाहीन की तरह।
ख़ुदा की क़सम मुझे कुछ भी नहीं
पता मौलाना साहब
पर आमेना की हरी कच्च नीली नीली
आँखें और उसका मासूम बच्चे की
अँगुलियों पर
ठहरा रंग
किसी को तो मिला होगा मौलाना साहब

जैसा कि प्लेटो के बाद के कई
फिलासफरों ने उसे पुनर्सृजन वग़ैरह कहा था
तो मौलाना साहब सच कहूँ
ख़ुदा क़सम मैंने आमेना से
कभी भी मोहब्बत नहीं की
पर आमेना बेइंतहा याद आती है
इतनी इतनी इतनी ज़्यादा

याद आती है आमेना
कि कभी याद ही नहीं आती आमेना
कि इस धरती पर
आमेना की याद में नहीं लिखी गई
कभी कोई नज़्म
धड़कनों पर बरस-दर-बरस
ऐसी चलती रही आमेना
जैसे धड़कन ही चल रही हो
सिर्फ़ आमेना सिर्फ़ आमेना
वक़्त की रफ़्तार जैसे बढ़ती थी
जैसे बढ़ती थी हर दिन एक तारीख़
जैसे बढ़ता था साल
जैसे बढ़ जाती थी एक सदी
आमेना हमेशा बढ़ती रही वैसे

घटी कभी नहीं मौलाना साहब!
युसूफ़ बाबा!! और जल्ला आपा!!!
आमेना की आँखें नीली और हरी थीं
उसका रंग इतना दूधिया था
कि एक बच्चे ने उसे छूकर देखा था।
मैंने आमेना को कभी नहीं
देखा था
किसी दुनिया में भी नहीं
आमेना नब्बे के दशक में
धरती के किसी कॉलेज में
मेरे साथ कभी
नहीं पढ़ी थी मौलाना साहेब!
ख़ुदा की क़सम
मैं नहीं जानता आमेना
को बिल्कुल भी नहीं।

जुलाई

यह जुलाई का एक
महीना है
यह समय की एक घड़ी है
बरसात से बेहद ठंडी शाम है यह एक
मेरी हड्डियों तक पैठ गई है ठंड
मेरे जिस्म पर केवल पतला और
सस्ता-सा कपड़ा है आमेना
सिर्फ़ ग़मे इश्क़ में डूबे रहना कामचोरी है
और वह हरामी मैं नहीं हूँ आमेना
मैंने चलाया है रिक्शा
मारे हैं फ़ौलाद पर हथौड़े
खोदी हैं खंतियाँ इतनी-इतनी
कि आंतों में कुछ नहीं बचा
आँतों तक आँसू उतर गए थे
तुम्हारी याद में
तुम्हारी याद में रगों में दौड़ जाता है ख़ून

भर जाती है भुजाओं में ताक़त
रच देता हूँ एक संसार
इस जुलाई के महीने में किसी शाम
हमने तय किया था

हम इस क्षण को नहीं भूलेंगे
यह क्षण है जुलाई का
मैं आज तुम्हें याद कर रहा हूँ बेइन्तहा
इस क्षण तुम भी मुझे याद करो आमेना!
तुम याद करोगी यह क्षण तो कायम रहेगी
लगातार क्रूर होती दुनिया में
मुख़ालफ़त
मुख़ालफ़त का यह क्षण किसी दिन
बीज बनेगा बीज दरख़्त औ दरख़्त
जंगल में तब्दील होगा
किसी दिन यह कविता नहीं
लिखनी होगी आमेना!
आमेना यह जुलाई का एक महीना है।

प्रेम का संसार

जिन लोगों के साथ काम करता हूँ मैं
नहीं जानते वे कि अलहदा हूँ उनसे मैं
हाँ में हिलती है गर्दन पर वह हाँ ही नहीं होती मेरी
उनके हर उचक्के और कमीनेपन पर मेरी चुप्पी
मेरी सहमति नहीं होती कतई
कुछ केवल रौरव नरक की कल्पना करते हैं बाकी के लिए
कुछ केवल अपने लिए जन्नत चाहते हैं वह भी षड्यंत्र के
हथियार से।
नहीं जानते वे कि कितना फ़ीका हो जाता है हर षड्यंत्र
भोली और निष्पाप निष्कलुषता के आगे।
कुछ आती हैं लिपी-पुती रंगी रंगाई
महँगे वस्त्रों और बाज़ार की अदाओं से भरी
किसी ग़ुलाम दुनिया से
वे भी नहीं जानती दिव्य दृष्टि धारी
कि मैं कितनी निर्मल कितनी निश्छल
आज़ादी चाहता हूँ उनके लिए

ऐसी आज़ादी जहाँ सब के सब आज़ाद हैं
सब निष्पाप हैं किसी का किसी से दगा नहीं
मैं उन लोगों के साथ बस काम करता हूँ
अंतड़ियों को बचाने के लिए
कि मेरी आत्मा को आज तक छू नहीं पाई है
दफ़्तरी कालिख की रज भी।
नहीं जानते वे कि घृणा के संसार से
नहीं संभव हुआ कभी विश्व विजेता
हथियारों से जीते गए केवल कबीले
नहीं जीते गए आत्मा के देश
और प्रेम के ब्रह्मांड
कभी नहीं जीते गए दिल
हिंसा की दृश्य और अदृश्य स्थितियों से
बहुत बड़ा है प्रेम का संसार।

अजोध्या से गुजरात

खो गई है किसी की गाड़ी
और किसी का गंतव्य
किसी को पता नहीं है मंज़िल का
कोई मंज़िल की आस में बैठा है उनींदा
कोई सब कुछ गंवाकर
बढ़ रहा है नई शुरुआत की तरफ़
एक है जिसने भर लिया है घड़ा
खिसका रहा है कोई अपने ही
बेबस साथी की पोटली
महिला बोगी में बैठी वह
आँसुओं से नहला रही है अंधकार को

इस ट्रेन में दो स्वप्न मिल गए हैं
जो लंबी यात्रा पर जाना चाहते हैं

इन सबकी यात्राओं के बीच
जो भी है कूड़ा करकट उनको
बुहार लेना चाहते हैं कुछ
बेहद कोमल हाथ और बेहद निश्छल मन से
गुजरात से अजोध्या
अजोध्या से गुजरात
इन सबको भी जगह दो भाई!!

हमारी दुनिया

यह हम सृजनधर्मियों की दुनिया है
तुम क्या जानोगे इसको?
कहते हो तुम जिन्हें छोटी जात
कहते हो तुम जिसे ख़राब चाल चलन
दुनिया बची है उनसे ही अब तक
वर्ना तो जिस्म को सदियों से बनाते
गुदाज गोरा
मिटा ही दी होती तुमने पूरी जाति।

ख़राब चाल चलन से उपजा
आज़ादी का राजपथ।
तुम क्या जानो तुम तो ठहरे तोड़ू-फोड़ू

तुम क्या जानो
क्यों खड़े हैं सदा से हम उसके खिलाफ
जिस सेठ को समझते तुम
धर्मात्मा, पुण्यात्मा, दयालु

कविता के एक्स-रे और पैथालॉजी में
नहीं वह
जीने के काबिल पल एक भी।

उसे इंसानों के कब्रिस्तान में
दफ़नाया भी नहीं जा सकता
उसमें है बड़ी संक्रामक बीमारी।

सच है बात तुम्हारी कि
बिगड़े घर अक्सर हमारे
जोड़ी नहीं हमने फूटी कौड़ी भी
औलादों ने दी कभी-कभी गाली भी
पर बताओ भैया गिरिजाशंकर अग्रवाल
पप्पू तेल वाले और मुल्लाजी सीमेंट वाले
समय की सतत चाल पर
क्यों खड़े हैं सदा से हमारे सवाल?
क्यों चलती है सिर्फ़ बात हमारी?
क्यों नहीं मिटी कभी खानदान हमारी
तमाम फाँसियों, जेलों, जहरखुरानी और जुल्मों से?

क्यों नाम सुनते ही
भयभीत हो जाते हैं
आला हुक्काम और
लहराते धर्मपताका धाम?
हमारे कुटुम्बी मरे भूख से
रहे बहुत फटेहाल
फिर क्यों डतरे हो जबकि हम
ठहरे कंगाल?

तुम्हें पता नहीं
तुम्हारी लदी-फदी औरतें
तुम्हारी आज्ञाकारी बेटी-दब्बू
तुम्हारी भोगवंती प्रिया
लात जूते खाता चौकीदार, जमादार
हमारी बातों से सहमत है
सबसे ज़्यादा।

मौन से करते हैं जब ये सब संवाद
खिल उठते हैं चेहरे इनके
मुस्कुरा देते हैं अचानक
दरअसल उस घड़ी हमारी ही
बातें
होती हैं उनके जहन में।

तुम्हारे बौद्धिक में

सुना है तुम हो बड़े बुद्धिमान
करते हो बौद्धिक अक्सर
भैया सुकुलजी, दुबेजी, विपट साब
और सुना है तुम भी बड़े चिंतित हो
खड़सेजी, दिलारेजी और पवार साब
तजकरा तुम भी करते हो ख़ूब
गुफ़रान भाई, युसुफ़ बाबा, जल्ला आपा।

पर क्यों खाते हो तुम जान
तुम्हारे बौद्धिक में यही पता नहीं
कि कुम्हारों को कितना लगता है डर
तुम्हारे बाज़ार से
कि चमार भूल गए हैं चमड़े का हुनर
अल्ली बाबा रंगरेज के घर नहीं रहे
कपड़े रंगने के छापे
कि रामसिंग मिरदंगिया छूने भी नहीं देता
कभी अपने बच्चों को ढोलक।
कि लक्कड़ के नायाब कारीगरों ने
फुटपाथ पर लगा लिये हैं ठेले
मैगी और अंकल चिप्स के।
मधुर हलूर गाने वाले रहने लगे हैं
अक्सर मौन

खजूर, बांस और छिंद के काम करने वाले
छूते ही फूट पड़ते हैं
बड़े-बड़े हार्वेस्टर और डोजर मशीनों को देख
भीख माँगने लगे हैं गाँव के गाँव।
सौ-सौ कोस दूर जा रहे हैं चैत में आदिवासी।
पर लौटते वक़्त उनकी पोटली में उदासी के सिवा
नहीं होता और कुछ।
पारदी, कंजर और घुमक्कड़
कर रहे हैं छोटे-मोटे अपराध
फिर भी रह जाते हैं वे भूखे नंगे
कभी रेल से कटकर मर जाते हैं
कभी मर जाते हैं भयानक बीमारी से
रोज़ जेब कतरने वाले टिरू, शेरू, गबू, यासीन
ठीक से कपड़े भी नहीं पहन पाते
हाड़ तोड़ मेहनत के बाद भी
नहीं हो पाता बच्चों का इलाज

आपके आर्यावर्त
आपकी क्रांतभूमि
आपकी गंगो-जमन के लिए
यह बहुत चिंताजनक है
इनकी संख्या बहुत बढ़ रही है
यह कोई कवि नहीं
मानव संसाधन मंत्री
सांख्यिकी विभाग
और आपका प्यारा अमेरिका
कह रहा है।

सोच लो तुम्हीं
तुम्हीं कितने ख़तरे में हो
तुम तो करते हो अक्सर बौद्धिक।

रोज

रोज ही हो जाती है आधी रात
रोज ही छूट जाते हैं नींद के किनारे
रोज ही समुद्री मीलों की तरह दूर
रोज असह्य बेचैनी असह्य उथल-पुथल
रोज अनेक खयाल चेहरे अनेक
रोज किसको रोकें बतियाएँ किससे ?

मुसलसल ख़िलाफ़त है यह जागरण हर रोज
निशाचर कतई नहीं हम
हमारा जागरण तुम्हारे जागरण से नितांत भिन्न।

धड़धड़ाती है जब धड़धड़या पुल पर रेल
चीखते हैं जब बारंगी गेट
सेठ की जीन से छूटती है जब रात पाली
रोज फिर लगता है, है साथ कोई।

रोज की है कई दफे सोने की ईमानदार कोशिश
रोज सुट भी दाबी कई बार

रोज कई बार जबरदस्ती मींच ली आँखें
रोज किये और भी कई नवाचार

बढ़ गई बेचैनी—एक और उस रोज।

रोज शब्द से शब्द जुटते गए
रोज जुटता गया कोई धर्मेन्द्र पारे
रोज जुटते हैं जैसे रेल्वे स्टेशन पर
लिये झाड़ू, नामालूम और अनाम बच्चे
रोज शब्द धर्मेन्द्र पारे में समा जाते हैं
रोज धर्मेन्द्र पारे शब्दों में समा जाता है।
रोज दुनिया की सांख्यिकी से
घट जाता है धर्मेन्द्र पारे
खोजो भी तो वह नहीं मिलता
हो जाता कभी आग का गोला
कभी तितली कभी नाव
रोज कभी बन जाता तुम!

शब्दों में खो जाएगा वह एक रोज
आधी रात को उठने वाली हूक का हर शब्द
धर्मेन्द्र पारे होगा
रोज सैकड़ों लड़के होते हैं
इन शब्दों में।

सैकड़ों लड़कों में होते हैं
रोज शब्द।

अंततः

अंततः
भुला ही दिया जाता है
दुःख दारुण दुःख।

भुला न भी दिया जाए
तो भी
क्षीण असर तो कर ही
दिया जाता है।

महान दुखद कहानियाँ
महान प्रलय
महान क्रांतियाँ
और महान प्रेम।
कुछ भी तो नहीं बकाया
अब।
याद भी किया जाता है
इन्हें तो बहुत
पोचेपन से।
एक पृथ्वी थी
एक सूरज था
एक तुम थीं
एक मैं था।

कहीं कुछ भी नहीं रहा
आओ....आओ
पूरी ताक़त से प्यार करें।

दुःख की अपनी गाथा

दुःख उसके होठों पर, आँखों में, बालों में, कपड़ों में भी है।
शायद खीसे में भी,
किसी मंत्री से नहीं दिलवाया उसको दुःख
न भेजा किसी ने कोई गुंडा दुःख लेकर उसके पास
न पाकिस्तान ने छोड़ी दुःख की कोई मिसाइल उसके ऊपर।

वह उठते से दुखी हो जाता है
वह दोपहर में दुखी रहता है
वह सोकर भी दुखी होता है
वह दुखी होकर भी दुखी ही होता है
वह दुखी न होकर भी दुखी ही होता है।

वह दुखियों पर दुखी होता है
वह सुखियों पर दुखी होता है।

भारत सरकार के आव्रजन अधिकारियों ने
गई रात हवाई अड्डे पर
बोरिया बिस्तर बाँधे दुःख को
बिना वीज़ा बनवाए भागते हुए पकड़ लिया।
दुख बंद है तिहाड़ में
बताया गया है कि वह—
काफी डरा-डरा-सा रहता है वहाँ।

एक मनुष्येतर कथा

वे अक्सर और साथ-साथ निकलते थे
वे अक्सर और लगातार बातें करते थे
साथ-साथ लौटते थे, साथ-साथ बँधते थे
साथ-साथ पिटते थे, साथ-साथ खाते-पीते थे

वे लगातार चरते रहते थे, वे लगातार भक्षण करते
रहते थे
वे साथ-साथ दौड़ते थे साथ-साथ
कुदड़ाते-फुदड़ाते थे
साथ-साथ हँसते थे जब भी रोते साथ-साथ रोते
साथ-साथ उदास होते साथ-साथ ही गीत गाते थे

वे साथ-साथ ही लीद करते थे, साथ-साथ सूँघते थे
अक्सर लौटने में अपनी लीद यहाँ-वहाँ छितरा
देते थे
बिखरा देते थे साथ-साथ

वे जिस खेत में होते यदि कोई विजातीय शुद्धतम
अंत:करण से भी
पानी पीने के लिए घुस आता
वे उसे मेड़ ही नहीं कांकड़ से भी दूर तक खदेड़
आते थे
उन्हें हर विजातीय और आगंतुक शत्रु ही
लगता था
उनकी दुनिया में संक्रमण और निष्क्रमण बिल्कुल
नहीं था

उनके पास अपनी भाषा थी अपने मानक थे
अपने ही शिल्प थे अपनी ही निजी आँखें थीं

वे अकेले नहीं थे बीसवीं सदी के ठीक आख़िरी
दिनों में भी
उनका पूरा भरापूरा समाज था, उनकी एक पूरी
दुनिया थी

हाँ, यह सचमुच ही पशुओं की कथा है
बिल्कुल ताज़ा और बिल्कुल पशुओं की कथा है

इस कथा का सचमुच ही मनुष्यों से कोई रिश्ता
नहीं है

पक्षधरता

एक दिन वह चीलों से कौओं से बहुत
प्रेम करने लगा अचानक ही।
उसने मिट्ठुओं, मैनाओं और गौरैयाओं के
हक़ों और आधारों को कड़ी चुनौतियाँ दीं
नदियों में सदियों से मछलियों के वास करने पर
सख़्त नाराज़ भी हुआ वह।
हेलीकार के विरोध में वह नंगे पाँव चलने लगा

जिस दुनिया में वह रह रहा था
वह एक प्राकृतिक दुनिया थी
उसे ईश्वर नहीं
पूरी तरह प्रकृति हाँक रही थी
फिर भी उसने कई मनुजों से लगातार लड़ाइयाँ लड़ीं
उसने कई बच्चों को बुरी तरह पीट डाला
उसने कइयों को लबूर लिया।

इन सबमें से कोई भी
न चील कौओं के ख़िलाफ़ था
न मिट्ठुओं मैनाओं के पक्ष में
न किसी ने नदी मछलियों को लीज पर दी थी
न किसी ने हेलीकार देखी थी
मैं किससे करूँ गुजारिश?
वह फिर आने वाला है शहर में!!

रंग संकट

वह सिर्फ़ रंग से भाषा, रंग से शब्द और रंग से अर्थ
समझ सकता था
एक बार वह लाल रंग में डूब गया था। हालाँकि उसके निजी
इतिहास में लाल रंग बनाने का रिकार्ड नहीं मिलता।

कहा जाता है कि पीला भी घोल चुका था
पहले कभी वह।
कभी वह काले कुट्ट की दुनिया में भी खो जाता था
पर लगा उसको वह भी बेमानी

इन दिनों नीले रंग से बहुत ज़्यादा प्रेम कर रहा है वह
रंग प्रेमी, रंग शब्दी, रंग अर्थी

यहाँ तक कि वह अब लाल को भी नीला
और यह भी कि काले को भी नीला देख रहा है वह

वह रंग बनने और बनाने की प्रक्रिया
वह रंग बनाने के इतिहास और नज़रिए
वह रंग को उघाड़ने और हल्के करने
किसी से वाक़िफ़ नहीं था
उसके हाथ में रंग की एक पूरी दुकान है
मुझे दामन से ज्यादा चिंता है आकाश की
आजकल वह उधर ही देखता है बहुत।

सवाल की कविता

वह सिर्फ़ और सिर्फ़
सवाल करता है
सवाल लिखता है
सवाल बाँटता है, सवाल ही जीता है

सवालों को सवालों के लिए सवाल के द्वारा
सवालों से सवालों को जोड़ता है
और इन्हीं के लिए सवाल उठाता है

सवाल दर सवाल है उसके पास
सवालीराम है वह सवालदास भी है वह
वही सवालीसिंह है, और वही सवालचंद भी

सारे सवालों पर उसका कब्ज़ा है। सवालख़ास है वह।

सावधान! इतने ज़्यादा सवाल हैं उसके पास कि
लिखे नहीं जा सकते
इतनी स्याही लगेगी जितनी सूरदास ने भी नहीं चाही थी
कभी।
दीवारों पर दरवाज़ों पर दराजों में
चप्पे-चप्पे में शब्द-शब्द में सवाल ही सवाल
चस्पा कर दिए हैं उसने

कुछ दिनों से वह एक पेड़ को बुरी तरह घूर रहा था
कल रात पूरा जंगल उससे माफ़ी माँगने आया था।

मैं उसको इसीलिए देख रहा हूँ
ताकि आपको बता सकूँ कि अब क्या करेगा वह।

आशय

शाम हो रही है, पलों में घट रहा है अघट समय
एक चिड़िया लौट आई है अपने घोंसले में
नदी ने अपनी प्रतीक्षा अभी-अभी ख़त्म की है
अभी-अभी पानी पीकर घाट चढ़ रहा है आख़िरी बैल
रो रही है चिड़िया बिलख-बिलख कर
बैल की नसें दर्द से फट पड़ी हैं।

दोस्तो! हमारी भाषा बेहद संकुचित हो रही है
हम चिड़ियों का रोना, बैलों का बिलखना
अब नहीं ताड़ पाते।

चिड़ियों की भाषा का आशय समझने वाली
स्त्रियाँ अब नहीं होतीं
अब बैलों से बात करने वाले
लोग भी नहीं होते।

एक दिन हमारे पास सिर्फ़
कोरी ठन-ठन भाषा होगी
जो घर के ढेरों सामानों के बीच
कहीं सजी होगी
और हम अपने आँसू अँगुलियों पर
लिए-लिए दौड़ रहे होंगे
तड़प रहे होंगे और कोई हमारा आशय
समझ नहीं रहा होगा
हमारा बच्चा खिलखिलाएगा
और कोई बम फोड़ देगा

भाषा

उन दिनों
कोई भाषा नहीं रही थी
हमारे पास संवाद की।

उन दिनों
बहुत कड़े पहरे थे।

हालाँकि
गायों को पूरा खेत
दे दिया गया था
किसानों ने उत्तर चैत्र में।
चिड़ियों को कोई मनाही
नहीं रही थी
कहीं जाने की।

हमारी आँखें
लंबी चर्चा का विषय
बन जाती थीं
मोहल्ले और कॉलेज में

हमारी आँखें
कभी हिंसक नहीं रहीं

हिंसक आँखों से
तो सब डरते थे
उनका जिक्र भी
अँधेरों या सन्नाटे में
फुसफुसा कर ही
होता था।

उन्हीं दिनों
हमने गढ़े थे
संकेत

संकेत
भाषा बनते गए
और संवाद कायम रहा।

आज मैं
सारे प्रतीकों और संकेतों
के साथ खड़ा हुआ
फ़ॉसिल में बदल रहा हूँ

शब्द, संकेत, अर्थ
कोशिशों से तलाश रहा हूँ
पर सब निरर्थक है!

एक समूची भाषा को लेकर
मैं बहुत चिंतित और भयाक्रांत हूँ
जो हमारी
हम सबकी
तक़लीफ़ों को बयान कर
सके।

सबसे पहले यह भाषा मैं
तुम पर आज़माऊँगा
सबसे सुंदर भाषा
सबसे ज़्यादा प्यार की
भाषा होती है।

कविता एक भाषा ही तो है।

दफा होइए श्रीमान

रोज़ वह मुझसे पीता है चाय
कभी-कभी खाता है मिठाई
कभी खाता है सीताफल और केले भी।
फिर परम प्रसन्न परम सुखी होकर
मन ही मन होता है मुदित कि
अच्छा चूतिया बनाया साले को।

सब्ज़ी बाज़ार हो या हो अस्पताल
लपकता है वह—देना यार ज़रा बीस रुपये
और इस बार कली-कली खिल जाती है उसकी।

कभी वह होता है कचहरी में
कभी खड़ा मिलता है होटल में
एन०जी०ओ० की ड्रेस पहनता है वह
कई बार
अपनी भोग्याओं को कहता है वह
हमेशा बहन।
वह गुमशुदा नहीं है
आपको भी मिलता ही होगा।

मैंने भी कहा आप भी कहिए
कि
अब दफा होइए श्रीमान।

द चोट्टे

कुछ दृश्य
आ चुके हैं वे कवियों की जमात में
हो गए हैं उनमें भी अब कई पत्रकार
वे पढ़ा रहे हैं विश्वविद्यालयों में
गा रहे हैं सबसे ज़्यादा राष्ट्रगान

एस०पी० ले जा रहा है
वास्ते उनके पान सुपारी
हो गया है गदगद
देख उनको जिलाधीश

एक साथ कई स्त्रियों के
हो गए हैं वे प्रेमी सबसे भरोसेमंद
तय हो रहे हैं पाठ्यक्रमों में पाठ उनके
हिरनी की आँखों से तराश ली मासूमियत
कई-कई प्रतिलिपियाँ कर ली हैं
सच की उन्होंने

'चोरी छिपे' उन्होंने ही दिया था मुहावरा
दंतकथाएँ और लोकोक्तियाँ कई
थी उनके विषय में मशहूर

कुछ ध्वनियाँ
सुन सको तो सुनो अब भी, मसलन
भन्ते! वे चुरा ले गए हैं मेरी करुणा
हे राम!! नहीं है यह वसीयत मेरी
कामरेड!!! बहुत छला गया मैं यहाँ

कुछ समाहार
बड़ी हिकारत से देखते थे जिन्हें डकैत
चोर भी समझते थे अपने से हीन
छा गए हैं वे सारे आकाश पर
मिटा दिए हैं उन्होंने शिशुओं के रेखांकन
गूँज रही है उनके लिए केवल
प्रार्थना!

चोट्टे हो गए हैं अब सिरमौर
रहे नहीं अब वे कोई ऐसे वैसे

सर्द रात

सर्द रात में
जब रोता है कुत्ता तो
अनिष्ट की आशंका में
डर जाता है गाँव पटेल

काँप उठता है पुजारी

गाँव कोटवार
थाने की चिंता में घिर जाता है।

घीसी सुनारिन
गठरियाँ एक बार और
चपल लेती है।

एक बार और
राख खोरकर
लाला ज़ला लेता है
खाँसते खँखारते बीड़ी।

कुल मिलाकर सारा गाँव
अपशगुन में घिरा रहता है।

बस फुसांडे मारकर सोता है
मोजू भंगी
जवान दुआरका बलाहिन
और चम्पी कुतिया

इनके सपने में भी
नहीं छिनता इनसे कुछ और

रात में भी
इनमें से कोई
नहीं मारता डण्डा कुत्ते को।

नदियों का क्रोध

देदली
ही नहीं
बही थी
उस रात।
और भी
नदियों ने
तोड़े थे तटबंध
माचक
गंजाल
मटकुल
टिमरन
कौन नहीं था
शामिल उस
महाप्रलय में
सब भूल गई थी
आत्मा
जीव
परमात्मा
कैसा उन्माद चढ़ा था

कैसी मस्ती तोड़ रही
थी वे कालियादेह में?

कल तक जो
धोती थी पाँव
आज उन्हें छूने
से डर रहे थे लोग।

नदियों को
चढ़ता है क्रोध
तो ठुकरा
देती है पूजा की
थाली
उछाल देती है
सिराये हुए दीप।

पहली बार जाना
कितना गुस्सा
होता है
नीची निगाह कर
सहमे-सहमे
लगातार बहने में।

नानी कितना ज़्यादा
जानकार थी
कर आती थी
क्षमा याचना पूजा
अर्चना
दीप सिराना
सुबह-सुबह
मुँह अँधेरे
बहुत पहले से।

सहयात्री

बस में बैठे सहयात्री
कविता नहीं लिखने देते

बीड़ी पीने देते हैं
मनाही नहीं होती किसी को
औरतों को घूरने में

बच्चों की जगह पर
काबिज होकर सब
हँसते हैं फूहड़ तरीक़े से

बस में
बस कविता नहीं लिखने देते

वे झाँकते हैं
शुतुरमुर्ग की तरह गर्दन
उठाकर
चिपक जाते हैं चाम जूँ की
भाँति

जैसा कि
वे मानते हैं प्रेम पत्र लिखना
इस सदी का सबसे बड़ा अपराध है
जबकि ज़्यादातर लोग ऐसा करते हैं।

उचक उचक कर वे
सिर्फ
कविता ही नहीं पढ़ते
शक और हिकारत से देखते भी हैं

सवाल पूछ पूछकर
हलकान कर डालते हैं
मानो उनकी दुनिया के
बागी और हत्यारे हों हम!

दोस्त नारायण टॉकिज़ के

शाम होते ही
इकट्ठे हो जाते हैं
शहर भर के दोस्त
जैसे इकट्ठे हो जाते हैं
तारे
घनघोर अमावस की
रात में।

ख़ूब लगाते हैं ठहाके
करते हैं ख़ूब-ख़ूब बातें
ख़ुराफ़ातें

पिता की उम्मीदों को
सहलाकर आता है कोई
कोई इश्क़ में नहाकर
आता है।

उदास नहीं होता है
कोई दोस्त

दोस्तों की हँसी
कभी नहीं रुकती
शव यात्राओं में भी
धीरे से हँस लेते हैं दोस्त
जैसे हँसते हों वे
मृत्यु पर।

दोस्त चिड़ियों की तरह
मँडराते हैं
तितलियों से रंग-बिरंगे
फुर्र-फुर्र होते हैं

पल्लर की पल्लर
जाते हैं वे
पाखण्डियों—धूर्तों—दोगलों को
चिढ़ा आते हैं
कट चाय पीते हुए
पान खाते हुए
ख़ूब चटखारे लेते हैं वे
ठहाके तो जन्नत तक को
शर्माते हैं उनके।

उदास दोस्त की
उड़ाते हैं हँसी ख़ूब
नौकरी की बात करता है
जो उसकी भी
सबसे ज़्यादा ना पसंद है
उन्हें यही
कभी रोते नहीं देखा
किसी ने किसी दोस्त को।

पर दोस्त सभी
दुखी हैं बहुत
यह सबसे बड़ा
सच है।

आपके शहर में
कैसा क्या हाल है
भाई?

अपने वर्तमान में

तहखाने को साफ़ किया तो संदूक भर दी
और संदूक को साफ़ किया तो तहखाना भर दिया
एक चिट्ठी बहुत पुरानी थी
जिसमें से सचमुच अब भी
चिड़िया के चहचहाने की आवाज़ आती थी
लंबी यात्राओं के दो टिकट थे
जिन पर टिकिट बाबू
भूल गया था तारीख़ दर्ज करना
एक नक़्शा था किसी अनाम शहर का
कुछ हथियार पड़े थे जो सचमुच काम आ सकते थे
खरगोश के रेखाचित्र और कुछ नाम
जो आज के युग में बच्चों के हो सकते थे
इतना कुछ था तहखाने में
कि कुछ भी बेदखल नहीं कर पाया मैं
सिवा एक लिफ़ाफ़े से दूसरे लिफ़ाफ़े
एक जगह से दूसरी जगह
चीजें अपनी जगह थीं
अपने वर्तमान में।

मुराद

ठीक मोहनदास वल्द करमचंद की तरह
जर्जर शरीर से काँपता एक बूढ़ा
पंजाब मेल में गूंखंडी के पास
खड़े भर होने के लिए याचना कर रहा था

लगभग मरणासन्न बच्चे को गोद में लिए
आखिरी बार अपने मायके जाना चाह रही थी
एक औरत, टिकट खरीदने की हैसियत नहीं थी उसकी

निरंजन और असहाय लड़की भीख की प्रतीक्षा में
दीवार से सटी जा रही थी
इसी तंगी में दिखाना चाह रहे थे कुछ बच्चे नट के करतब
इसी तंगी में लगाना चाह रहे थे कुछ झाड़ू
जूठन समेट रहे थे कुछ

बीड़ी किंग उर्फ गम्मू काका
नकली इलेक्ट्रॉनिक सामानों के व्यापारी
खेमचंद धमनानी
सास भी कभी बहू थी के गजब के फैन
पत्रकार श्री गोविन्दा जैन
सबकी थी एक मुराद कि
टी०सी० या पुलिस भगा दे
इन नामुरादों को

मैं पिता हो रहा हूँ

सच पूछो तो इन दिनों मुझे
सबसे बड़ा खतरा लगता है
अपने पिता हो जाने का।

पिताजी ज़रा में खोल देते हैं
सबके सामने कलेजा अपना
सब ऊँच-नीच और वे बातें भी
जो हैं घर परिवार की।
सच-सच बता देते हैं वे
वे बातें भी, बताने में जिन्हें
होती है शर्मिन्दगी मुझे।
मामला घर की माली हालत का हो
या हो बहू-बेटियों-बच्चों के चाल-चलन का।

सच-सच बता देते हैं सबको
कि गाँव में कौन-कौन है नंगा
बेईमान के मुँह पर कह देते हैं

साफ़-साफ़
पर होती है मुझे अक्सर इससे
बहुत दिक्कत।

सधते काम कई
बिगड़ जाते हैं पल भर में।
पटवारी और बड़े हुक्काम
बड़े दरवज्जे वाले पटेल और
मामा होटल वाला

आता है जब भी मौक़ा
जलती में खोंस देते हैं पूला।
भुनभुनाते हैं पिता कि
इतना जुल्म, इतनी ज़्यादती
सरासर अन्याय।

उम्र के इस दौर तक
मैं तो रहा दुनियादार
ज़रूरत पड़ी तो किया सबको सलाम
ज़रूरत पड़ी तो सच को भी कहा झूठ
ज़रूरत पड़ी तो मिलाई हाँ में हाँ
ज़रूरत पड़ी तो बोली कई बार जय
ज़रूरत पड़ी तो निपोरे दाँत भी
जिनके लिए निकलती सदा गाली
ज़रूरत पड़ी तो उन्हें भी कहा भैया प्रणाम।
वे हत्यारे थे, वे अत्याचारी थे वे थे सबसे
ख़तरनाक।

पर हुआ इधर क्या कुछ
कि होता नहीं ज़्यादा सहन
जो सोच भी नहीं सकता
खड़ा हो जाता हूँ उनके ख़िलाफ़

मुँह फट जाता है चाहे जहाँ
सूबेदार को कह आया—चोट्टे साले!
और उस कलम वाले को—दल्ले!!
ख़ामियाजा भुगतता हूँ फिर लगातार
होती है ग्लानि
पत्नी कहती कि हो रही है बेटी अब बड़ी
कुछ तो बनो दुनियादार।

पिता की आदतें मेरे सामने
हारर फिल्म-सी दौड़ती हैं लगातार।

खलनायक से लगते हैं पिता
मेरे वक़्त के सफलतम दोस्तों
मैं पिता हो रहा हूँ
यानि समझते हो?

सपनों पर गिद्ध

संपत थोड़ी विपत घणी
ख़त्म होगी
एक दिन।

एक दिन
बड़ में कोपल आएँगी
खूब हरी-हरी।

गेहूँ का कस
पोची चमड़ी को
चिकना देगा एक बार
फिर।

माथे पर रखी चोमल
रेशम की होगी
और कलश मोती जड़ा
होगा
एक दिन।

मत गा माँ
मत गा बहन

मत देखो सपना
गीधनी ने देख लिया है
हमें
हम सबको।

ख़िलाफ़त

भगवानों की दुनिया है
कोई है इस्लामाबाद में
कुछ हैं न्यूयार्क में
वाशिंगटन में
यूरोप में
कमी नहीं है यहाँ भी।

तय कर डाला है इन्होंने
मनुष्य के पग-पग को
यहाँ तक कि
देखने और साँस
लेने को भी।

कोई अर्थ तय करता है
कोई आत्मा।

मैं, मेरा शहर, मेरे प्यारे दोस्त
हम सब इनके ख़िलाफ़ हैं
सख़्त ख़िलाफ़
हम इन्हें कदाचित
नहीं मान सकते
ये
सुन लें और इस
कविता को हमारे
हलफ़नामे के रूप में
लिख लें।

युद्ध

हो चुकी है खामोश
रणभेरियाँ सभी।
मिट गई हैं
सलवटें माथे की।
शुरू हो गया है
आवागमन
सो रहे हैं श्वान
बेखटके।
आ रही है डोली
उस पार से
बंध गई है आस
सभी प्रेयसियों को।
निरस्त किए जा रहे हैं फरमान
उखाड़ी जा रही हैं
अपनी ही बिछाई सुरंगें
रोक लिये हैं पिंडारे सारे।
भेजे जा रहे हैं बैरकों में

हरावल दस्ते
स्थगित कर दिये हैं
हथियारों के
आगामी करार सभी।
उतारे जा रहे हैं
बिजूके
बुलाया जा रहा है
वापस
गणिकाओं और कापालिकों को
भेदियों को कहा गया है मना।

सेनापति सभी
मिला चुके हैं हाथ
मिल रहे हैं गले
राजा
परस्पर कर रहे हैं प्रेम
पुराने शत्रु और दुश्मन जानी तब के
कहीं बहुत ज्यादा
पहले से अब।
तनाव में होने वाली
चहल-कदमी
कर रही साथ में
कदमताल।
मूठ पर चला जाता था
बात-बात में जो हाथ
उस हाथ से हाथ मिला रहे हैं
राजा।

लड़ रहे हैं केवल सिपाही।
सिपाही भरे हैं अभी भी
घोर घृणा से

लड़ रहे हैं अभी भी
प्रहर आठों।

भर उठे हैं प्यार से
सेनापति सभी
कबूल ली है परस्पर
दोस्ती
राजाओं ने।
छुपाए जा रहे हैं
दस्तावेज घृणा के सभी।

दोहराते हुए पाठ
युद्ध का
सिद्ध करते हुए अग्निमंत्र
गिरा फिर कोई
अभी-अभी।
युद्ध यह
परिचालित है स्वत: अब।
हासिल कर ली है
युद्ध ने
सत्ता अपनी।
अपना
खुद मुख्तार हो उठा है
युद्ध।
मिला लिये हैं हाथ
राजाओं ने
बैठे हैं वे
दर्शक दीर्घा में सभी।

शिविरबद्ध नहीं है कोई
वे हैं केवल राजा

शिविरबद्ध हैं वे
वे हैं घोर घृणा से भरे
सिपाही हैं वे।
डूबे हुए आपादमस्तक
घृणा में।

ज्वालाओं को अपनी
कर रहे हैं वे निस्तेज
रचे हुए अपने ही
मिटा रहे हैं चक्रव्यूह।

जमींदोज कर रहे हैं
अपना ही असलाह
हैं राजा वे सब।
हैं नेता वे सब।
हो चुकी है सिद्ध
निरर्थकता युद्ध की।

मजा जो खाने में
मिल बैठ
नहीं मजा वह
युद्ध की जीत में भी।
लड़ रहे हैं केवल सिपाही
मारे गये
सिपाही जो
लड़ रहे हैं बन प्रेत
लगातार वे भी।
हो उठे हैं संदिग्ध
विश्वसनीय सबसे
सिपाही अपने ही।
रहा नहीं सुरक्षित

शिविर राजाओं का
दुर्ग किले और
हरम सब
संदिग्ध हो उठे हैं
रक्षक सभी।

वक्त है यह जहरखुरानी का
अंगरक्षकों की
अपने ही।

बना बेटा प्रेत का
प्रेत
लड़ा खूब
खूब लड़ रहे हैं सिपाही।
कहा था पहले भी
था वह भी राजा
कि
निरर्थक है युद्ध
लड़ रहे हैं केवल सिपाही।

हैं अब भी स्त्रियाँ
उपलब्धि
सबसे बड़ी
युद्ध की
सिपाही भूखे लड़ रहे हैं
केवल स्त्रियों से।

जनगणमन और बुलबुले
जहां की सारे
हो गये हैं अनुकूलित
डूबे हैं जहर में
देश

ज़हर में
देश जो थे ही नहीं कभी देश
लड़ रहे हैं केवल सिपाही

मारे तो गए
बुद्ध।
मारे तो गए तुम
बुद्ध।
तुम मारे गए बुद्ध।

प्रश्न करें क्या
तुमसे ?
क्या करें प्रश्न तुमसे ?
यह शिशु ?
शिशु यह ?
शिशु शाला यह ?

घुट्टी यह !
घिसोरा यह !!
बौद्धिक यह !!!

लड़ रहे हैं केवल सिपाही !

भन्ते ! बख्श दो शिशुओं को
भन्ते बख्श दो
बख्शने की तहजीब।
प्रार्थना,
बख्श दो भन्ते !
प्रेम, बख्श दो भन्ते।
भन्ते बख्श दो
ईश्वर।
भाई है मेरा वह

बख्श दो भन्ते।
तुमुल कोलाहल
टंकार खड्ग की
रचनाएँ भयानक
व्यूह की
अँधेरे में बम एक....
भन्ते....!
वह....वह देखो
भन्ते रुको। देखो....
रुको भन्ते।
वे आँखें देखो
बेइन्तहा प्यार से भरी हैं वे!
किसकी हैं आँखें वे?
वे आँखें बख्श दो भन्ते!!

आओ, चलाओ गोली
मारो तेग
काटो भुजाएँ मेरी
डाल दो सलाखें
लो
यह हैं आँखें मेरी
हिंसा ही हिंसा
तेग तुम्हारी
रह गई तेग केवल
कहाँ है तेग स्वर्ण की?

चले गए हैं
सिपाही
लड़ते-लड़ते दूर
बहुत दूर
बहुत दूर चला गया है

युद्ध
नहीं है पता उनका शेष
आधार शिविर में कोई।
लड़ रहे हैं केवल सिपाही।
पहुँच गए हैं लड़ते-लड़ते
सैनिक
अपरिचित देश में
हैं आश्चर्यचकित वे
नहीं है वहाँ घृणा परस्पर
नहीं है वहाँ हिंसा परस्पर
नहीं है वहाँ काफिर म्लेच्छ परस्पर

कि बौखला गए हैं सैनिक
कि हिंसक और बर्बर हो उठे हैं
कि वे कर रहे हैं हत्या फिर

लड़ रहे हैं केवल सिपाही।
लफ्ज प्रेम के
खलल हैं
हस्तक्षेप हैं बातें
प्यार की
लड़ रहे हैं केवल सिपाही
तैरते घृणा के समुद्र में
जीते हुए घृणा
रोम-रोम में।

वे नहीं जी पाए पल भर भी
प्रेम के आकाश में
मार डाला खुदी को
उन्होंने
अपनी ही हिंसा से

अपनी घृणा से
मार डाला।

लड़ रहे हैं केवल सिपाही

उतार दिये हैं शिरस्त्राण
रख दिए हैं कवच कुंडल
टाँग दी है खड्ग ढाल
खूँटियों पर
कर रहे हैं राजा विश्राम
चारक
घोंट रहे हैं बाजी कारक
कर रहे हैं राजा
मद्यपान
सुन रहे हैं छंद।
आलिंगनरत हैं राजा
रनिवास में।

लड़ रहे हैं केवल सिपाही

भूल चुके हैं वे
भाषा
वे हैं सिपाही।
शेष हैं उनकी भाषा में
केवल गाली।

लड़ रहे हैं केवल सिपाही
मिला चुके हैं हाथ राजा।

अपने शहर में

अपने शहर में
डर नहीं होता
हत्या का, लूट का
अनहोनी वारदात का

अपने शहर में सदा
चार लोगों से उम्मीद रहती है

अपने शहर में
दो आँखें अक्सर पीछा करती हैं
शिकारी बिल्ली की तरह।

अपने शहर में
गली-गली, घर-घर
ख़तरनाक सच्चाई पहरे देती है

अपने शहर में
शहर की सीमा से
ज़्यादा बाहर नहीं होता आदमी।

अपने शहर में
हमेशा गुनिए में रहता है
मनुष्य।

वह

उसने दक्षिणपंथियों में वाममार्गी कहा मुझे
वाममार्गियों में दक्षिणपंथी

अछूतों में सवर्ण बताया मुझे
सवर्णों में घृणा से शूद्र लिखा मुझे

हिन्दुओं से कहा कि म्लेच्छ हूँ मैं
मुस्लिमों में काफ़िर साबित किया

आस्तिकों को उनका दुश्मन नम्बर एक
और तार्किकों में घोर पोंगापंथी ठहराया

ऐसा ही उसने
तानाशाहों से कहा
मज़दूरों को समझाया
लोकतांत्रिकों के कान में फुसफुसाया

तमाम उम्र
वह मुझे जीता रहा
अपना क़द ऐसे उठाता रहा

वह मरा जब स्वयं
मुझे अमर्त्य चिल्लाया

एकांत

एकांत
इतना एकांत
दो मुझे
कि
धड़कनों की तह-तह
खुल जाए
यदि हो, तो
परत-दर-परत
पानी की उधड़ जाए
अखिल ब्रह्मांड चुप हो
चुप हो
समय
अनहद बाजे साफ़-साफ़

सुनो तुम
सुनूँ मैं।

सवाल

दिन नहीं कोई
ऐसा
माँगी न हो जब किसी
क्लर्क ने घूस
तपती रोहिणी में।

मुस्कुराये हों ख़ेड़ीपुरा
स्कूल के बच्चे
एक साथ।

ऐसा दिन नहीं कोई
कि कोई भुगतान शेष नहीं
हो किसी का भी।

कोई दिन
दिन नहीं।

आर्यों की द्रविड़ों की
धरती पर

शकों हूणों की धरती
पर
मुगलों-आँग्लों की
धरती पर
मैं किस नस्ल
धर्म जाति परंपरा
से हूँ?

हिन्दुस्तान के समूचे
नक्शे में
समूचा समय
सिर्फ कुछ लोगों की
वसीयत में ही दर्ज है।

परिवर्तन

तुमने कहा
तुम बाज़ को
पहचानने की कोशिश
कर रही हो।

तुमने कहा
तुम बाज़ की
निगाह पहचान गई।

तुमने फिर
नहीं कहा कुछ भी
मैंने देखा सिर्फ़!

तुम्हारी निगाह
बाज़ की निगाह
हो गई।

शहर

ये शहर
सबसे बड़ा शहर है
शहरों में भी सबसे बड़ा
शहर है यह शहर।

सबसे ज़्यादा लोग
रहते हैं सबसे बड़े शहर में
सबसे ज़्यादा चौड़ी
पक्की सड़कें हैं
सबसे बड़े शहर में।

सबसे बड़े कारकून कारिंदे
सबसे बड़े शहंशाह अदीब
रहते हैं सबसे बड़े शहर में।

सबसे बड़े हथियार
स्कूल किताबें सब कुछ
सबसे बड़ा है सबसे बड़े शहर में

सबसे ज़्यादा
शिखंडी
नगरवधू
नर पुंगव
रहते हैं
सबसे बड़े शहर में।

संभावना

किसी दिन अचानक
ट्रेन में मिल जाने की
संभावना थी।

अनायास यात्राओं में संभव
थी मुलाक़ात

दुर्घटनाओं में
उपलब्धियों में भी
संभव थीं उम्मीदें

एक मुकम्मिल ज़िंदगी
कायम थी
असंभव यथार्थ से।

या तुम पर
दुःख का पहाड़ टूट सकता
था
मेरे शहंशाह होने को भी
कौन रोक सकता था
हृदय परिवर्तन भी हुए हैं
बहुत संसार में

तुम्हारे मिल जाने की
पूरी-पूरी उम्मीद है
काग़ज़ में कलम में।

घर

माँ नहीं थी
माँ की जगह
दीवार पर एका माला टँगी थी।

भाई नहीं था
भाई एक
तस्वीर में लटक गया था।

और पिता की आँखें
रात भर जले दीये सी
टिमटिमा रही थीं।

सारा घर
दीवारों पे टँगी
तस्वीरों में
बदल गया

लोग कहीं नहीं रहे
घर में

गिर गये सब
कच्ची दीवारों के पोपड़ों की
तरह।

इस भयानक सुनसान
में पड़ी
आँखों को क्या
कभी कोई
देख पाएगा।

इन आँखों को
देख पाने की दृष्टि
जनसंख्या पुस्तिका में
कहाँ दर्ज है ?

कुछ दिन

कुछ दिन हैं शेष
शेष हैं कुछ दिन

कल गिरेगी समय की छत से
ईंट एक
एक गिरेगी परसों
गिरेगी कुछ दिन बाद एक

विदा दूँगा मैं
तुम सबको

खत्म होंगे तुम्हारे कुछ दिन
खुशी-खुशी लौटोगे तुम

रह जाएँगे मेरे पास शेष
कुछ दिन
सतत समय में फैला दूँगा
कुछ दिन इसी तरह।

चूल्हा

मिट्टी का चूल्हा
गवाह था
माँ के प्यार का।

कितनी पक गई थीं
उसकी दीवारें
लगातार सालों आँच सहते
जैसे माँ की एक-एक बातें।

चूल्हा भरे-पूरे परिवार का
इतिहास था।

जब-जब चूल्हा फरकता था
कोई अतिथि कभी भूखा नहीं जाता था।

चूल्हा पूरे घर की खुशी में शरीक था
चूल्हा पूरे घर के दुःख में दुखी था।

चूल्हा हम भाई-बहनों, माता-पिता में
ग़ैर नहीं था
चूल्हा घर को घर करता था।

हमने चूल्हे को कभी बुझा हुआ
उदास नहीं देखा
जैसे पिता

अब तुम इस चूल्हे को उखाड़ना
चाहती हो ?

मैं अपनी जड़ों से कटकर कैसे पलक सकूँगा ?

इच्छा

बच्चा गेंद
लेकर सोता है
गुड्डन को सुलाता है पास
पतंग रखता है सिरहाने

माँ की आँख झपकते ही
दूध छोड़ देता है
बच्चा।

अपनी भाषा में
बात करता है
बच्चा
अपनी बोली में बुलाता है
बच्चा
अपनी संवेदना और
अनुभूति में छूता है बच्चा
गेंद गुड्डन और पतंग को

दरअसल मैं उसकी ही तरह
आप सबसे
गेंद गुड्डन पतंग की
भाषा में मिलना चाहता हूँ।

पतंग

आधी रात
जब सो जाती है माँ
अपनी पतंग
लेकर उठ जाता है
बच्चा।

पतंग थिगा देता है
वह आसमान में
सितारों से टकराने लगती
है पतंग
शाम तक रात तक
अहर्निश उड़ाता जाता
है बच्चा पतंग
और माँ!
आवाज़ नहीं देती है
पीछे से।

काट देता है वह
सारी हरी नीली पीली
पतंग
उसकी घिर्री में धागा
ख़त्म नहीं होता।

आज भी मेरे पास
धागे का छोटा-सा
टुकड़ा है
जिसे रात गए
चुपके से निकालता हूँ मैं

वास्तविकता

अँधेरा था
लेकिन वहाँ
जल तो था

जीवित रहने को
पर्याप्त।

हालाँकि मृत्यु के
ख़तरे वहाँ भी
कम न थे।

जल की सतह
के ऊपर तो
निश्चित निश्चित
घात लगाकर
बैठे थे
बगुले।

जल की
सतह के ऊपर
जल ही कहाँ था?

सबसे सुंदर दिन

कितना गुलाल
उड़ा होगा आकाश में
कैसे चमके होंगे सींग बैलों के
हंसों के माध्यम से
आये थे
संदेश।

रतन जड़ी धरती पर
तुमने पाँव रखा था
जिस दिन

वो रात रात्रि नहीं थी
वो दुनिया के इतिहास का
सबसे सुंदर और
प्यारा दिन था।

एक-एक दिन
सबने जिया होगा।

सच

सबसे सुंदर मछली का
तैरना हमने नहीं देखा
सबसे सुंदर मछली
हमने नहीं देखी

हमने चिड़ियों का मैथुन
देखा
चिड़ियों का प्रणय नहीं
देखा।

हमने सच कहाँ
देखा।

एक दिन

बहुत सारी
चिट्ठियाँ ख़रीद लाया
एक दिन।

पहाड़ लगा दिए
पोस्टकार्डों के
अम्बार खड़ा कर दिया
लिफ़ाफ़ों का

बहुत सारी चिट्ठियाँ
ख़रीद लाया
एक दिन

एक समूचे दिन
बैठा रहा
मैं गुमसुम

दरख़्त

गुलेल
हैं
कुछ।

कुछ
पत्थर हैं

इशारे हैं कुछ
लोग।

फ़क़त दरख़्त
हूँ मैं

सनसनाते पत्थर
तार-तार कर रहे हैं
पत्ते मेरे
लहूलुहान है
माथा मेरा।

चिड़ियों को
आकाश देने के लिए
प ड़ होना बहुत
ज़रूरी है।

कई बार

सबसे लड़ाका बैल मेड़ों पर आता है बहुत काम
बेक्कल के काँटे उपयोगी हो जाते हैं कई बार
कई बार गलीज और मलीज भाषा ढाल बन
जाती है

कई बार बंजर रह जाता है सोलह गुना पकने
वाला खेत

कई बार रीती रह जाती है सबसे दुधारू भैंस
कई बार अक्सर काम नहीं आते सबसे मजबूत
हाथ।

(पिछले फ्लैप से आगे)

इसके साथ उसका यह निजत्व भी गौर करने लायक है जहाँ वह जगह-जगह अपनी कविताओं में समय (काल) का किसी न किसी रूप में इस्तेमाल करता है। यह प्रवृत्ति उसके पहले काव्य संग्रह में भी मौजूद है। 'समय' एक प्रकार से संपुट की तरह उसकी कविताओं में किसी न किसी अर्थ में; प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मौजूद रहता है। समय के प्रति इतनी अधिक सावधानी और सजगता उसके हमउम्र युवा रचनाकर्मियों में प्रायः नहीं मिलती है। 'बीसवीं तारीख के आसपास' के बाद, 'समय रहते' का यह प्रकाशन अपने शीर्षकों द्वारा भी धर्मेन्द्र पारे की समय (काल) सापेक्ष प्रतिबद्धता के सूचक हैं, जो उसके कवि को कथन के हर मुकाम पर निर्भीक बनाते हैं और संवेदना तथा अनुभूतियों के स्तरों पर विचार संयत भी।

—प्रेमशंकर रघुवंशी


धर्मेन्द्र पारे

जन्म : 31 मार्च 1967
शिक्षा : पी.एच.डी.।
स्थान : हरदा (म.प्र.)।

प्रकाशन : 'बीसवीं तारीख के आसपास' (काव्य संग्रह), 'कोरकू संस्कार गीत' (शोध), '[illegible] सिपाही गाथा' (शोध), 'ढोला कुँवर कोरकू जनजातीय गाथा' (शोध)। कोरकू देवलोक प्रकाशनाधीन, भुआणा संस्कृति प्रकाशनाधीन। पहल, वागर्थ, नया ज्ञानोदय, कल के लिए, वसुधा, साक्षात्कार, अक्षर पर्व, वर्तमान साहित्य, चौमासा, अक्षरा, काव्यम्, जनसत्ता, दैनिक नई दुनिया, दैनिक भास्कर आदि में कविता कहानी लेख प्रकाशित।

संप्रति : शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हरदा में सहायक प्राध्यापक, लखनऊ विश्वविद्यालय से डी.लिट्. हेतु शोधरत।
संपर्क : 51, शहीद भगतसिंह वार्ड, खेड़ीपुरा, हरदा 461331 (म.प्र.)
फोन : मोबाइल : 9826090978 ◆ घर : 07577-223976
ई मेल : pare_dharmendra@yahoo.com



मेधा बुक्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032